विषय-सूची ।

जैसे चाहो वैसे बन जाओ ।

१—मन और स्वभाव ।

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत ।
पारब्रह्म को पाइये, मन ही के परतीत ॥

एक दोहे में कवि ने क्या अच्छा कहा है । वास्तव में मनुष्य का मन ही सब कुछ है । जैसा मन होता है वैसा ही स्वभाव होता है । जैसा मनुष्य मन में विचार करता है, जैसी भावनायें उसके हृदय में उत्पन्न होती हैं, वैसा ही वह स्वयं हो जाता है । अमुक मनुष्य कैसा है, उस का चरित्र कैसा है, उस का स्वभाव मृदु है या कठोर है, या

वह सुखी है, या दु:खी है, इन सब बातों का पता उसके मन से और उसके विचारों से लग सकता है। मनुष्य चाहे तो अपने विचारों से स्वर्ग को नरक बना दे और चाहे तो नरक को स्वर्ग बना दे, दुःखों में रहता हुआ भी सुख का अनुभव करे और सुखों का भोग करता हुआ भी दु:खी रहे। सुख दु:ख मन की अवस्थायें है। ये किसी वस्तु के होने या न होने पर निर्भर नहीं हैं। सम्भव है कि एक राजा धन सम्पदा और ऐश्वर्य्य को भोगता हुआ भी रात दिन चिन्ता रूपी चिता में जलता रहता हो और एक भिखारी जिसको भर पेट भोजन भी नही मिलता, सन्तोषरूपी अमृत का पान करता रहता हो। यह सब मनका प्रभाव है। जैसा मनुष्य विचारता है, तद्रूप होता है विचार शक्ति बड़ी प्रबल होती है। जैसे विचार होते है वैसे ही कार्य होते है। कार्य्य विचार के अनुकूल होते है।

जिस प्रकार बीज से अंकुर उत्पन्न होते है और फिर वे बढ़कर पेड़ का रूप धारण करते है उसी प्रकार मनुष्य का प्रत्येक कार्य उसके अन्तरङ्ग विचारों से उत्पन्न होता है। कोई काम भी बिना विचार के नही होता। प्रत्येक कार्य से पहले उस कार्य के करने का विचार होता है। विचार के बाद कार्य होता है। बहुत से कार्य ऐसे होते है कि जिनके करने का सङ्कल्प नही किया जाता, वैसे ही वे हो जाते है, परन्तु वे भी विचारानुकूल ही होते है। उनके करने से पहले भी मन मे कुछ न कुछ विचार उनके विषय में अवश्य उत्पन्न होते हैं। भावार्थ, दुनियां मे कोई ऐसा काम नही है जो विचारानुकूल न हो।

जिस प्रकार पेड़ मे कलियां निकलती है और कलिया मे से फूटकर फूल निकलते है, वैसे ही विचार रूपी कलियों में

से कार्यरूपी फल निकलते हैं और सुख दुःख उनके फल होते हैं। जैसा मनुष्य बीज बोता है, उसके अनुसार फल लगता है। कहावत भी है 'जैसा बोओगे, वैसा काटोगे'। खट्टे आम की गुठली से खट्टा आम पैदा होता है और मीठे आम की गुठली से मीठा आम होता है। जिस मनुष्य के विचार बुरे और गंदे होते हैं, वह सदा शोक और दुःख में ग्रसित रहता है, परन्तु जिसके विचार विशुद्ध और पवित्र हैं, वह सदा हर्ष और आनन्द में निमग्न रहता है। मनुष्य की बढ़वारी प्रकृति के नियमानुसार होती रहती है। विचार के गुप्त साम्राज्य में कारण और कार्य का सम्बन्ध वैसा ही दृढ़ और स्थायी है जैसा कि बाह्य स्थूल जगत में दृष्टि गोचर होता है। यदि कोई मनुष्य सभ्य और सुशील है सदाचारी और धर्मात्मा है तो यह न समझना चाहिए कि वह दैवयोग से ऐसा है, अथवा किसी की दया या कृपा से ऐसा है, किन्तु इसका कारण यह है कि वह अपने मन में निरंतर सद्विचारों को स्थान देने में और शुभ भावनाओं के भाने में तत्पर रहा है और उन्हीं का यह परिणाम है। इसके विपरीत जो मनुष्य निरन्तर तुच्छ और घृणित विचारों को अपने मन में स्थान देता रहता है, वह अन्त में नीच और पशु तुल्य बन जाता है।

मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। वह चाहे तो अपने को बना सकता है और चाहे तो बिगाड़ सकता है। वह चाहे तो स्वयं अपने उच्च कर्तव्यों से ऊँचे से स्वर्ग में पहुंच सकता है और चाहे तो नीचा चारों से नीचे नरक कुण्ड में गिर सकता है। अपने विचाररूपी शस्त्रागार में वह ऐसे ऐसे शस्त्र बनाता है जिनसे अपने को नष्ट कर डालता है, परन्तु वही पर

वह ऐसे २ यंत्र भी बना सकता है जिनसे अपने रहने के लिए हर्ष और आनन्द के विशाल भवन बना लेता है, सद्विचारों के ग्रहण करने और उनके अनुकूल प्रवृत्ति करने से मनुष्य पूर्ण परमानन्द परमात्म पद को प्राप्त कर सकता है: परन्तु इसके विपरीत निंद्य कुत्सित विचारों से वही मनुष्य पशुओं से भी नीचे गिर जाता है, चरित्र की ये ही दो अवस्थायें हैं, इन में पहिली सब से ऊंची है और पिछली सब से नीची, इन्हीं दोनों के बीच में अन्य अवस्थायें हैं और मनुष्य ही उनका कर्त्ताधर्त्ता और निर्माता है॥

आत्मा के सम्बंध में अब तक जितने उत्तम, उपयोगी और महत्वपूर्ण सिद्धांत मालूम हुए हैं, उन में सब से अधिक उपयोगी और आनन्दवर्द्धक सिद्धांत यह है कि मनुष्य अपने मन का राजा, अपने स्वभाव का कर्त्ता और अपनी स्थिति, अवस्था और प्रारब्ध का निर्माता है॥

मनुष्य बल, प्रेम और बुद्धि का पुतला है और अपने विचारों का राजा है, इसीलिए उसके पास प्रत्येक स्थिति और अवस्था की कुंजी है और उसमें भिन्न भिन्न रूप धारण करने वाली एक ऐसी शक्ति विद्यमान है कि जिसके कारण वह जो चाहे बन सकता है और चाहे जिस अवस्था में अपने को बदल सकता है।

मनुष्य प्रत्येक दशा में अपने ऊपर अधिकार रखता है, यहां तक कि अत्यन्त निर्बल और पतित अवस्था में भी पूर्ण रूप से वह अपना स्वामी और अधिकारी है, हां, यह अवश्य है कि इस पतित अवस्था में वह एक मूर्ख स्वामी है जो अपने कुटुम्ब का

बुरी तरह से शासन करता है; परन्तु वही मनुष्य जब अपनी अवस्था पर विचार करने लगता है और अपने अस्तित्व के सिद्धान्त की सच्चे मन से जांच करने लगता है, तो बुद्धिमान स्वामी बन जाता है जो बुद्धिमानी से अपनी शक्तियों का उपयोग करता है और ऐसे विचार स्थिर करता है कि उनका परिणाम सदैव उत्तम और लाभदायक होता है। ऐसा मनुष्य ही विवेकी स्वामी है। इस अवस्था को मनुष्य तभी प्राप्त कर सकता है कि जब वह अपने भीतर मनोबल के सिद्धांतों का अनुशीलन करे और इसके लिये निरंतर श्रम, उद्योग और विचार-अनुभव की आवश्यकता है।

जिस प्रकार बहुत सी खानों के खोदने और खोज करने के बाद सोने और हीरों की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार मनुष्य अपने अस्तित्व के प्रत्येक सिद्धांत को उसी समय मालूम कर सकता है जब कि वह अपनी आत्मा की खानि को बहुत गहरा खोदे: अर्थात् बहुत कुछ विचार और अनुशीलन करे। यदि मनुष्य अपने विचारों को अपने वश में रक्खे, उनमें आवश्यकतानुकूल परिवर्तन करता रहे और इस बात का पता लगाये कि उनसे स्वयं उस पर, दूसरों पर तथा उसके जीवन और जीवन की घटनाओं पर क्या २ असर होते है, तथा अत्यंत शांति और धैर्य के साथ खोज कर के कारण और कार्य के सम्बन्ध का मालूम करे और अपनी प्रति दिन की साधारण से साधारण घटनाओं के अनुभव से भी उस आत्म-ज्ञान की प्राप्ति में लाभ उठावे जिसका नाम बल, विवेक और बुद्धि है, तो उस समय यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो सकती है कि स्वयं मनुष्य ही

अपने चरित्र का कर्त्ता, अपने जीवन का विधाता और अपने भाग्य का निर्माता है॥ इसीलिए यह सिद्धांत बिल्कुल सच्चा है:-

'जिन खोजा तिन पाइयां'

जो खोजेगा सो पावेगा, जो खटखटायेगा उसके लिए द्वार खुलेगा. कारण कि निरन्तर के उद्योग, सन्तोष और अभ्यास से ही मनुष्य सरस्वती-मन्दिर में प्रवेश पा सकता है॥
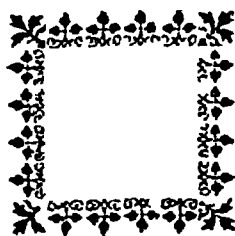
२–मन का घटनाओं पर असर।

मनुष्य का मन एक बाग के सदृश है जिस में वह चाहे तो अपनी बुद्धि से अच्छे अच्छे फल फूल लगा दे और चाहे तो यौंही पड़ा रहने दे, परन्तु चाहे उसमें कुछ बोवे और चाहे नबोवे, पैदा कुछ न कुछ ज़रूर होगा - यदि अच्छे बीज उसमें नहीं डाले जायँगे, तो बहुत से निकम्मे बीज अपने आप उसमें गिर जायँगे और जंगली घास पैदा कर देंगे॥

जिस प्रकार बागका माली अपनी ज़मीन को बोता है और उसमें से जंगली घासको उखाड़ कर अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार उसमें फल फूल उगाता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने मन रूपी बाग में से बुरे, निकम्मे और गन्दे विचारों को निकाल कर फेंक सकता है और उनके स्थान में अच्छे, सुथरे और पवित्र विचारों के फल फूल लगाकर उनको बढ़ा सकता है। ऐसा करने से उसे कभी न कभी देर सवेर इस बात का ज्ञान हो जायगा कि वह अपनी आत्मा का मुख्य अधिष्ठाता

और अपने जीवन का शासक और पथ प्रदर्शक है। मनोबल के सिद्धांत उसको स्वतः ज्ञात हो जायेंगे और वह इस बात को बड़ी सूक्ष्मता से समझ ने लगेगा कि किस प्रकार मानसिक शक्तियां और मानसिक तत्व उसके चरित्र, स्वभाव, स्थिति और प्रारब्ध के बनाने और रूप देने में कार्य करते रहते हैं। दूसरे शब्दों में मनुष्य का भाग्य और स्वभाव सब कुछ उसके अन्तरङ्ग विचारों के परिणाम है, अर्थात जैसे मनुष्य के मन मे विचार होते है, उन्ही के अनुसार उसका स्वभाव बन जाता है और उन्ही के अनुसार उसका प्रारब्ध है।

मन और स्वभाव वास्तव में एक ही है। जिस प्रकार मनुष्य का स्वभाव केवल घटनाओं और निकटवर्ती वस्तुओं के द्वारा प्रकट होता है, उसी प्रकार मनुष्य के जीवन की बाह्य अवस्थायें सदा उसकी अन्तरङ्ग अवस्थाओं से सम्बन्ध रखती हुई मालूम होंगी। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि किसी नियत समय पर उसकी स्थिति या अवस्था उसके सर्वाङ्ग चरित्र वा स्वभाव को सूचित करती है, परन्तु इसका यह अभिप्राय है कि वे अवस्थायें उसके किसी अन्तरङ्ग प्रबल विचार से इतना गहरा सम्बन्ध रखती हैं कि उस नियत समय के लिये तो वे अवश्य ही उसके अन्तरंग स्वभाव या विचारों की सूचक है।

प्रत्येक मनुष्य जहां कहीं भी है, अर्थात जिस दशा या अवस्था में भी है अपने अस्तित्व के सिद्धान्त के अनुसार है। वे विचार जिन्हें उसने अपने स्वभाव या चरित्र के रूप में डाल लिया है, उसे वहां ले गये हैं। उसके जीवन में कोई बात भी दैवी नहीं है। सब कुछ उस नियम और सिद्धांत के अनुसार

है जो कभी ग़लत नहीं हो सकता। यह सिद्धांत सर्व प्रकार के मनुष्यों पर लागू होता है। उन लोगों पर भी जो अपने आप को अपनी निकटस्थ घटनाओं और जीवन की अवस्थाओं में पृथक् समझते हैं और उन लोगों पर भी जो उन पर सन्तुष्ट हैं।

मनुष्य उन्नतिशील है, इस लिये वह जिस अवस्था में भी है उन्नति करता रहता है और जब वह जीवन की किसी अवस्था से भी आध्यात्मिक पाठ सीख लेता है, तो उसकी वह अवस्था जाती रहती है और उसके स्थान में नवीन अवस्था प्रगट हो जाती है।

मनुष्य उसी समय तक दशाओं (अवस्थाओं) की मार खाता रहता है, जब तक कि उसे इस बात का विश्वास रहता है कि मैं जीवन की बाह्य अवस्थाओं के आधीन हूं, अर्थात वे जहां चाहें मुझे हवा के झोंकों की तरह उड़ाकर ले जायें परंतु जब वह इस बात का अनुभव करने लगता है कि मुझ में स्वयं शक्ति है, मैं किसी के आधीन नहीं हूं और मैं अपने अस्तित्व की गुप्त भूमि और बीजों पर अर्थात विचारों पर जिन में से बाह्य अवस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ है, शासन कर सकता हूं, तब वह अपने ऊपर पूर्ण अधिकार पा लेता है और अपना सच्चा स्वामी बन जाता है। जिस मनुष्य ने कुछ काल तक भी इच्छानुरोध, इंद्रियदमन और आत्मविशुद्धि का अभ्यास किया है वह इस बातको अवश्य जानता होगा कि बाह्य अवस्थायें विचारों से उत्पन्न होती हैं, कारण कि उसने इस बात को भी देखा होगा कि जितना हेरफेर उसके विचारों में हुआ है उतना ही हेर फेर उसकी बाह्य अवस्था में भी हो गया होगा। अतएव यह बात सच है कि जब मनुष्य सच्चे दिल से अपने अवगुणों को

दूर करने का प्रयत्न करता है और शीघ्र प्रत्यक्ष उन्नति करता है, तो उस समय से उसे अनेक परिवर्तनों में से होकर गुजरना पड़ता है, अर्थात थोड़े से समय मे उसके जीवन में अनेक परि-वर्तन होते हैं।

आत्मा उस वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है जिस का विचार उस मे गुप्तरूप से विद्यमान रहता है, अथवा जिससे वह प्रेम करती है, अथवा जिस से वह भय खाती है। यही कारण है कि मर्यादा पुरुषोत्तम कृष्ण ने मृत्यु से भय न खाने की शिक्षा दी है। मृत्यु को आकर्षित करने वाला भी स्वयं मनुष्य है, कारण कि वह मृत्यु से भयभीत रहता है आत्मा में सम्पूर्ण शक्ति है। आत्मा ही उन्नति करके अपनी उच्चआकां-क्षाओं को प्राप्त करलेती है और आत्मा ही पतित होकर वास-नाओं के नरक कुंड में गिर पड़ती है। दशायें वा अवस्थायें वे कारण है जिन से आत्मा निज अवस्था को प्राप्त कर लेती है, अर्थात अपने अभीष्ट स्थान पर पहुंच जाती है।

विचार का प्रत्येक बीज जो मन में बोया जाता है या जिसे मनमे गिरने और जड़ पकड़ने दिया जाता है, वह देर या सवेर कार्य के रूप मे अपने जैसे फल पैदा करताहै। अर्थात् एक विचार से दूसरा नवीन विचार उत्पन्न होता है और वह विचार धीरे धीरे बढ़ता हुआ कार्य का रूप धारण कर लेता है। फिर समय और अवस्था के अनुकूल उसके फल लगते हैं अच्छे विचारों के अच्छे फल और बुरे विचारों के बुरे फल लगते है। दूसरे शब्दों में अच्छे विचारों का अच्छा फल होगा और बुरे विचारो का बुरा।

घटनाओं का बाह्य जगत् विचारों के अन्तरङ्ग जगत के अनुकूल रूप धारण करता है और अच्छी बुरी दोनों प्रकार की बाह्य अवस्थायें प्राणी मात्र के हित और लाभ के लिये प्रतिनिधि स्वरूप काम करती है। मनुष्य अपने कार्य का आप फल भोगता है, इस लिये वह सुख दुःख दोनों से शिक्षा ग्रहण करता है।

मनुष्य अपने अन्तरङ्ग विचारों इच्छाओं और आकांक्षाओं के अनुसार चलता हुआ, चाहे उसके विचार अच्छे हों चाहे बुरे, चाहे वह ऊंचे मार्ग पर चलता हो चाहे नीचे मार्ग पर अन्त मे अपने जीवन की बाह्य अवस्थाओं मे पहुंच कर अपनी करनी का फल भोगता है। उन्नति और सुधार के नियम सर्वत्र मौजूद है।

कोई मनुष्य शराब की भट्टी पर अथवा जेलखाने मे दैव या दुर्भाग्य से नही जाता, किन्तु नीच और कुत्सित विचारों और वासनाओं की पगडंडी से जाता है। कोई विशुद्ध हृदय मनुष्य अकस्मात् किसी बाह्य शक्ति से किसी दोष या पाप में नही फंसता, किन्तु पाप का विचार उसके मन मे गुप्त रूप से बहुत दिनो तक पकता रहता है और अवसर मिलते ही उसकी एकत्रित शक्ति प्रगट हो जाती है।

बाह्य दशा से मनुष्य बनता नही है, किन्तु उस से उसकी अन्तरंग दशा प्रगट हो जाती है। जब तक मनुष्य की रुचि स्वतः बुराई की ओर न हो, दुनियां में ऐसे कारण नही है कि जिन से वह बुराई मे पड़कर दुःख उठाये। इसी प्रकार जबतक मनुष्य की रुचि निरंतर नेकी और भलाई की ओर न हो,

तब तक कोई बाह्य कारण ऐसा नहीं है कि जो उसे भलाई के ऊंचे दरजे पर पहुंचा सके और सच्चा सुख पहुंचा सके। अतएव यह बात सिद्ध है कि मनुष्य जो अपने विचारों का आप ही मालिक है, आप ही अपने आपको बनाने वाला है। वह आप ही अपने कर्मों का कर्त्ता और अपने भाग्य का निर्माता है, यहां तक कि पैदा होने के समय भी आत्मा आप ही पैदा होती है और अपनी सांसारिक यात्रा के एक एक पग पर उन अवस्थाओं को अपनी ओर खींचती है जो स्वयं उसे प्रगट करती है और जो उसकी विशुद्धि, अशुद्धि और प्रबलता और निर्बलता की प्रति बिम्ब है।

मनुष्य उस वस्तु को अपनी ओर नहीं खीन्चते, जिसे वे चाहते है, किन्तु उस वस्तु को जो वे स्वयं हैं। उनकी लालसायें मिथ्या भावनायें और मानसिक कल्पनायें पग पग पर नष्ट हो जाती हैं, परन्तु उनके अन्तरंग विचार और इच्छाये उनके ही अन्तरंग आहार से, चाहे वह अच्छा हो चाहे बुरा, बढती रहती हैं। वह ब्रह्मज्ञान जो हमारे भाग्य को बनाता है, हमारे भीतर ही मौजूद है। वह हमारा आपा ही है अर्थात हम ही है। आदमी ने अपने हाथों में आपही हथकड़ियां डाल रक्खी है। विचार और कार्य भाग्य के जेलखाने के दारोगा है। कुत्सित विचार और नीचे कर्मों के कारण मनुष्य जेलखानेमें पड़ जाता है और यही विचार और कार्य स्वाधीनता के स्वर्गदूत हैं॥ शुद्ध विचारों औरउच्च कर्मों के कारण मनुष्य स्वाधीनता लाभ करता है। मनुष्य को वह वस्तु नहीं मिलती जिसकी वह इच्छा करता है अथवा जिसके लिये वह प्रार्थना करता है,किंतु वह वस्तुमिलती है जिसे वह मिहनत और सच्चाई से प्राप्त

करता है। उसकी इच्छा और प्रार्थनायें उस समय पूर्ण हो जाती हैं, जिस समय वे उसके विचारों और कार्यों के अनुकूल होती हैं। अतएव इस सिद्धांत के अनुसार अवस्थाओं और घटनाओं के विरुद्ध युद्ध करने के क्या अर्थ हैं? इसके यह अर्थ हैं, कि मनुष्य बाहर में निरंतर एक कार्य की प्रतिकूलता कर रहा है परन्तु उसके कारण को अपने हृदय में स्थान दे रहा है और उसकी रक्षा कर रहा है। वह कारण चाहे तो ज्ञात पाप के रूप में हो, चाहे अज्ञात निर्बलता के रूप में, चाहे किसी रूप में हो, पर उसके कारण उसका स्वामी अपनी भलाई के लिए उद्योग करने में रुक जाता है और उसके प्रतिकार के लिए ज़ोर से चिल्लाता है।

मनुष्य अपनी अवस्था के सुधारने के लिए तो चिंता करता है, किंतु अपना सुधार नहीं करना चाहता। यही कारण है कि वह उन्नति नहीं कर सकता और जहां का तहां रह जाता है। जो मनुष्य स्वार्थत्याग, इन्द्रियपराजय से नहीं डरता वह अवश्य अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर लेगा, अर्थात उसका इच्छित पदार्थ उसे अवश्य मिल जायगा। यह बात लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के पदार्थों के प्राप्त करने के लिए सच्ची है। जिस मनुष्य का उद्देश्य केवल धन प्राप्ति का है, उसे भी धन प्राप्ति से पहले स्वार्थ की अनेक आहुतियां देने और कष्ट उठाने के लिए तयार रहना चाहिए। फिर जो मनुष्य उच्च और उत्तम जीवन व्यतीत करना चाहता है उसे तो और भी अधिक स्वार्थ त्याग और इन्द्रियनिग्रह की आवश्यकता है।

उदाहरण के लिए एक आदमी है अत्यंत निर्धन है। उसे निरंतर इस बात की चिंता रहती है कि किसी प्रकार मेरी

बाह्य अवस्था सुधर जाय और मेरे गृह-सुख के साधन बढ़ जायँ, परन्तु वह सदा अपने काम से जी चुराता रहता है और यह सोचता है कि मुझे काफ़ी वेतन या मज़दूरी नहीं मिलती, इसलिए यदि मैं अपने मालिक को धोखा देता हूं तो कोई बेजा नहीं करता। ऐसा मनुष्य उन सरल और प्रारम्भिक नियमों को भी नहीं समझता, जो सच्ची उन्नति के मूल कारण हैं। वह केवल अपनी हीनावस्था से निकलने के ही सर्वथा अयोग्य नहीं है, किंतु वास्तव में वह अपने लिए पहले से भी अधिक हीनावस्था पैदा कर रहा है, कारण कि उसके मन में आलस, भीरुता और मायाचार के विचार भरे हुए हैं और उन्हीं के अनुसार उसकी प्रवृत्ति है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये। एक धनवान है। वह खाने पीने का अधिक लम्पटी है। उसी के कारण वह एक कष्ट-दायक रोग से निरन्तर ग्रसित रहता है। यद्यपि रोग से निवृत्ति पाने के लिए वह हज़ारों रुपया खर्च करने को तैयार है, परंतु अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता। अधिक खाने पीने की इच्छा को त्याग नहीं सकता। वह चाहता है कि मैं स्वादिष्ट और अप्राकृतिक पदार्थ भी खाये जाऊँ और मेरा स्वास्थ्य भी अच्छा बना रहे। यह कैसे सम्भव है! ऐसे मनुष्य का कभी स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह सकता, कारण कि वह अभी तक स्वास्थ्य के प्रारम्भिक नियमों से भी अपरिचित है।

एक और उदाहरण लीजिये। एक आदमी एक कारखाने का मालिक है। वह सदा ऐसा उपाय काम में लाया करता है जिनसे उसे अपने नौकरों को नियत वेतन न देना पड़े और

अधिक लाभ की आशा से उनका वेतन घटा देता है। ऐसा आदमी कभी सफलता लाभ नहीं कर सकता और जब वह देखता है कि न मेरी आबरू रही है और न मेरे पास धन है तो वह समय और भाग्य को दोष दिया करता है, परन्तु यह नहीं समझता कि जो कुछ मेरी हालत है, उसका कर्ता धर्ता मैं स्वयं आप ही हूं। मैं आप ही अपनी करनी से इस हालत को पहुंचा हूं।

मैंने यहां पर यह तीन उदाहरण केवल इस सिद्धांत की सत्यता को प्रगट करने के लिये दिये हैं कि वास्तव में मनुष्य अपनी स्थिति और अवस्था का आप ही पैदा करने वाला है, यद्यपि यह बात उसे प्राय: ज्ञात नहीं होती। और जब मनुष्य का उद्देश्य तो किसी अच्छे काम का हो, परन्तु उसके विचार और इच्छायें उसके प्रतिकूल हों तो वह स्वयमेव अपने उद्देश्य की पूर्ति में निरन्तर विघ्न डालता है। हम ऐसे ऐसे अनेक उदाहरण दे सकते हैं, परन्तु उनकी कोई आवश्यकता नहीं, कारण कि पाठकगण, यदि चाहें तो अपने ही मन और जीवन में मानसिक सिद्धांतों का पता लगा सकते हैं और जब तक ऐसा नहीं किया जायगा तब तक केवल बाह्य बातें, युक्तियां और प्रमाणों का काम नहीं दे सकतीं।

अवस्थायें इतनी पेचीदा हैं, विचार की जड़ इतनी गहरी है और सुख की दशायें भिन्न भिन्न मनुष्यों में एक दूसरे से इतनी भिन्न भिन्न हैं कि कोई मनुष्य किसी की केवल बाह्य अवस्था को देख कर उसकी अंतरङ्ग आत्मिक अवस्था का अनुमान नहीं कर सकता, चाहे वह स्वयमेव अपनी अन्तरङ्ग अवस्था को जानता है। सम्भव है कि एक मनुष्य कुछ बातों

में ईमानदारी का व्यवहार करता हो, फिर भी तंगी से रहता हो और एक दूसरा मनुष्य बेईमानीकरता हुआ भी धन प्राप्त करता हो। इससे प्रायः लोग यही अनुमान कर लेते हैं कि पहला मनुष्य अपनी ईमानदारी के कारण ग़रीब और तंग हाल रहता है और दूसरा मनुष्य बेईमानी के कारण फलता फूलता है, परन्तु ऐसा अनुमान बिना विचारे कर लिया जाता है। विचार करने से मालूम होगा कि न तो यह नतीजा निकाला जा सकता है कि बेईमान आदमी सर्वथा बुरा होता है और ईमानदार आदमी सर्वथा अच्छा होता है और न यही नतीजा निकाला जा सकता है कि बेईमानी से आदमी माला माल होता है और ईमानदारी से दुःख उठाता है। असल बात यह है कि ऐसे नतीजे निकालना ठीक नहीं है। सम्भव है कि बेईमान आदमी में भी कुछ ऐसे सद्गुण हों कि जो ईमानदार में न हों और ईमानदार में भी कुछ ऐसे दुर्गुण हों कि जो बेईमान में न हों। ईमानदार आदमी अपने शुभ कर्मों और सद्विचारों का फल भोगता है, परन्तु साथ में अपने दुराचारों और कुविचारों के कारण दुःख भी उठाता है। इसी प्रकार बेईमान आदमी भी अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है। भावार्थ, प्रत्येक मनुष्य अपने सुख दुःख का आप कर्त्ता और धर्त्ता है॥ जो जैसा करता है, वैसा फल भोगता है।

मान वश प्रायः लोगों का ऐसा विश्वास है कि हमको अपनी नेकी और भलाई के कारण दुःख उठाना पड़ता है, परन्तु जब तक मनुष्य सर्व प्रकार के नीच, घृणित और अपवित्र विचारों को अपने मन से बिलकुल निकाल न दे और अपनी

आत्मा पर से पापों का मैल धो न डाले, तब तक क्या किसी मनुष्य को इस बात के जानने और कहने का अधिकार हो सकता है कि मैं जो कुछ दुःख उठा रहा हूं वह अपने सुविचारों और सुकार्यों के कारण उठा रहा हूं? कदापि नहीं। पूर्ण ज्ञान और परम पद को प्राप्त करने से बहुत पहले ही मनुष्य को यह मालूम हो जाता है कि मेरे मन और जीवन में वह महान् नियम काम कर रहा है जो सर्वथा सत्य और न्याययुक्त है और इसी लिये उस के अनुसार बुराई के बदले भलाई और भलाई के बदले बुराई कभी नहीं मिल सकती। इतना ज्ञान होने पर जब वह अपनी पहिली अज्ञानता और अन्धावस्था पर दृष्टि डालेगा, तो उसे ज्ञान हो जायगा कि उस का जीवन पहले भी नियमबद्ध था और अब भी नियमबद्ध है और यह भी ज्ञात हो जाएगा कि उस के पूर्व के अनुभव चाहे वे भले थे, चाहे बुरे, उसके ही विचारों और कार्यों के परिणाम थे।

अच्छे विचारों और अच्छे कार्यों का कभी बुरा नतीजा नहीं हो सकता और बुरे विचारों और बुरे कार्यों का कभी अच्छा नतीजा नहीं हो सकता। अच्छे कामों का अच्छा नतीजा और बुरे कामों का बुरा नतीजा होता है। यही प्रकृति का नियम है। अनाज से अनाज पैदा होता है और कांटे से कांटा। जैसा बोओ वैसा काटो। आम से आम और बबूल से बबूल। इस नियम को लोग स्थूल जगत में तो खूब समझते हैं और इसके अनुसार प्रवृत्ति भी करते हैं, परन्तु शोक! बहुत कम लोग ऐसे हैं जो मानसिक और नैतिक जगत में इस नियम को, यद्यपि यह वैसा ही सीधा सादा है, स्वीकार करते हों और यही कारण है कि उनकी प्रवृत्ति इस की ओर नहीं होती

दुःख सदा किसी न किसी बात में ठीक विचार न करने के कारण होता है। दुःख इस बात का सूचक है कि वह मनुष्य जो दुःख मे ग्रसित है अपने से और अपने अस्तित्व के सिद्धांत मे दूर पड़ा हुआ है। दुःख का सबसे बड़ा और वास्तविक लाभ यह है कि वह मनुष्य को पवित्र और विशुद्ध बना देता है और जितने बुरे और गन्दे विचार उसमे भरे होते है उन सबको जला कर राख करदेता है। दुःख मनुष्यों के लिये वही काम करता है जो आग सोने को शुद्ध करने के लिये करती है। जो मनुष्य विशुद्ध है उसे क्या दुःख हो सकता है? जिस प्रकार सोने को तपाने से उस में से खोट और मैल निकल जाता है, फिर उसे आग में तपाने की कोई ज़रूरत नही रहती, वैसे ही जो मनुष्य पवित्र, विशुद्ध, निर्दोष और निष्पाप है उसे दुःख हो ही नही सकता।

मनुष्य तभी दुःख में ग्रसित होता है कि जब उसके आंतरिक विचारों और बाह्य अवस्थाओं में मेल नही होता और सुख का तभी भोग करता है जब उसके आंतरिक विचारों और बाह्य अवस्थाओं में मेल होता है। सद्विचार का अनुमान आनन्द वा परम सुख है, न कि धन दौलत और कुविचार का अनुमान परम दुःख है न कि धनाभाव। अर्थात किसी के पास धन सम्पदा के होने या न होने के कारण उसके विचारों का अनुमान नहीं करना चाहिये, किंतु यह समझना चाहिये कि जिसे आनन्द प्राप्त है, चाहे उस के पास धन सम्पदा हो या न हो, उस के विचार अच्छे है और जो मनुष्य आनंद से वंचित है और अशांत है, उस के पास धन सम्पदा के होते हुए भी यह अनुमान किया जा सकता है कि उस के विचार अच्छे नहीं हैं। सम्भव है कि एक मनुष्य नीच और कुशील हो और धनवान् हो और दूसरा

मनुष्य सुखी और आनन्दित हो और निर्धन हो। धन और आनन्द दोनों उसी समय एकत्र होते है कि जब धन का सावधानी और बुद्धिमानी से व्यय किया जाय और निर्धन मनुष्य उसी समय दुःख और आपत्ति मे गिरता है कि जब वह समझता है कि मेरे भाग्य ने अन्यायपूर्वक मुझे इस आपत्ति मे ढकेल दिया है।

निर्धनता और इन्द्रिय परवशता ये दो दुर्भाग्य की सीमायें हैं। ये दोनोंबातें अप्राकृतिक है और इनका कारण मन की बेतरतीबी है। जो मनुष्य सुखी, स्वस्थ और भाग्यवान् नहीं है, वह अपनी वास्तविक दशा में नहीं है सुख, स्वास्थ्य और सौभाग्य इस बात के चिन्ह है कि अंतरंग और बाह्य अवस्थायें एकसी है और मनुष्य अपनी बाह्य अवस्थाओं घटनाओं से मेल और सहानुभूति रखता है।

मनुष्य उसी समय से मनुष्य बनने लगता है जब से वह रोना, झींकना और शिकायत करना छोड़ देता है और उस गुप्त न्याय की तलाश करने लगता है। जिससे उसका जीवन सन्मार्ग पर लगता है और जब वह अपने मनको उसके अनुसार बना लेता है, तब दूसरो पर यह दोष लगाना छोड़ देता है कि वे लोग उसकी वर्तमान दशा के कारण हुए। उस समय वह अपने मन में उच्च और दृढ़ विचारों को स्थान देता है और बाह्य अवस्थाओं और घटनाओं को दोष देने के स्थान में उन को अपनी उन्नति के कारण और अपनी गुप्त शक्तियों के प्रगट करने के साधन समझता है।

यह संसार एक अटल नियम पर निर्धारित है। इसकी कोई

वस्तु भी अनियमित रूप से नहीं है। जीवन का तत्व न्याय है न कि अन्याय; और संसार के आत्मिक राज्य को रूप देने वाली और चलाने वाली शक्ति साधुता और सच्चरित्रता है, न कि कुशील और दुश्चरित्रता। जब यह बात है, तब मनुष्य को उचित है कि वह अपना सुधार करे और साधुता और सच्चरित्रता धारण करे। उस समय उसे इस बात का ज्ञान हो जायगा कि सम्पूर्ण जगत सत्य पर स्थिर है और साथ में यह भी ज्ञात हो जायगा कि जैसे जैसेवह दूसरे लोगों और पदार्थों के विषय में अपने विचारों को बदलता जाता है, वैसे वैसे वे लोग और पदार्थ भी उसके लिये बदलते जाते हैं।

इस बात की सच्चाई का सबूत प्रत्येक व्यक्ति में मौजूद है और इस लिये प्रत्येक व्यक्ति अपनी अन्तरंग अवस्था के नियम पूर्वक निरीक्षण करने और अपने विचारों को देख रेख करने से इस बात को आसानी से जान सकता है। एक मनुष्य को अपने विचार बिल्कुल बदल लेने दो, फिर देखो विचारों के बदलने से उसकी बाह्य अवस्थायें कितनी बदल जाती हैं। लोग समझते है कि विचार को गुप्त रक्खा जा सकता है, परंतु ऐसा नहीं हो सकता, कारण कि विचार शीघ्र ही स्वभाव बन जाता है और स्वभाव बाह्य अवस्था में प्रगट होता है। नीच और घृणित विचारों से मद्यपान और दुराचार की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति हो जाती है और यह प्रवृत्ति रोग और निर्धनता का कारण होती है। अर्थात् नीच विचारों से शराबखोरी की आदत पड़ती है और शराबखोरी से ग़रीबी और बीमारी आती है। सर्व प्रकार के गंदे विचारों से चिंता और दुर्बलता पैदा होती है और चिंता और दुर्बलता से निर्बलता आती है।

भय, सन्देह और चंचलता के विचारों से निर्बलता नपुंसकता और चंचलता की आदतें पैदा होती हैं और उनसे बाह्य अवस्था में असफलता, निर्धनता और पराधीनता देखने में आती है। आलस के विचार से बेईमानी और गंदेपन की आदतें पड़ती हैं और उनसे गरीबी और तंगदस्ती का सामना करना पडना है। द्वेष निन्दा के विचारों को दोष लगाने और उनको दु:ख पहुँचाने की आदत पड़ती है और उससे हानि, कष्ट और दुःख उठाना पडता है। स्वार्थपरता के विचारों से स्वार्थ की आदत पडती है जिससे कुछ न कुछ दुःख अवश्य उठाना पडता है। उसके विपरीत सर्व प्रकार के उत्तम विचारों से मन मे दया और प्रेम का अंकुर उत्पन्न होता है और उससे बाह्य मे प्रसन्नता रहती है। पवित्र विचारों से शील, संयम और इन्द्रिय दमन का अभ्यास होता है और उससे सुख और शांति मिलती है। साहस, वीरता, आत्मविश्वास और न्यायपरायणता के विचारों से मनुष्य में पुरुषत्व गुण उत्पन्न होता है और उससे सफलता, स्वतन्त्रता और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उत्साहवर्धक विचारों से श्रम और स्वच्छता का अभ्यास होता है और उनसे सुन्दर और मनोरम अवस्थायें उत्पन्न होती हैं। क्षमा और सुशीलता के विचारों से सभ्यता और नम्रता की आदत पडती है और उनसे आत्मरक्षा होती है। और प्रेम और निःस्वार्थता के विचारों से परोपकार और आत्मोत्सर्ग की आदत पड़ती है और उससे निश्चित और स्थायी रूप में सफलता और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

जब मनुष्य निरंतर एक प्रकार के विचारों को अपने मन में स्थान देगा, चाहे वे विचार अच्छे हों चाहे बुरे, यह कदापि

नहीं हो सकता कि उनका प्रभाव उसके स्वभाव चरित्र और बाह्य अवस्था पर न पड़े। मनुष्य अपनी बाह्य अवस्थाओं को एकदम अपनी इच्छा से नहीं चुन सकता, परन्तु हां अपने विचारों को अपनी इच्छा से चुन सकता है और विचारों से स्वभाव बनता है और स्वभाव से तदनुरूप अवस्थायें उत्पन्न होती हैं इस अपेक्षा से यह कहा जाता है कि मनुष्य अपनी अवस्था को आप उत्पन्न कर लेता है।

जिस प्रकार के विचारों को कोई मनुष्य सबसे अधिक बढ़ाना चाहता है, उनकी प्रवृत्ति में लाने के लिये प्रकृति उसकी सहायता करती है और ऐसे अवसर उपस्थित करती है कि जिनसे उसके अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के विचार शीघ्र ही प्रत्यक्ष में प्रगट हो जायेंगे।

उदाहरण के लिये यदि कोई मनुष्य अपने पापमय विचारों का त्याग दे, तो सारी दुनिया उसके आगे नम्र हो जायगी और उसकी सहायता करने के लिये तैयार रहेगी। यदि कोई मनुष्य निराशा और निर्बलता के विचारों को त्याग दे तो उसको चहुं ओर से उसके सबल विचारों को दृढ़ करने के अवसर मिलेंगे। यदि कोई मनुष्य अच्छे विचारों को उन्नतिदे, तो वह कदापि दुःख और विपत्ति में नहीं रह सकता और दुर्भाग्य उसका कुछ भी अपकार नहीं कर सकता। एक खिलौना होता है जिस में नाना प्रकार के रंग और रूप दिखलाई देते हैं। दुनियां भी उस खिलौने के सदृश है। इसमें हर समय मनुष्य को अपने विचारों के परिवर्तन से भांति २ के रूप दिखलाई देते हैं। अर्थात् जैसे २ मनुष्य के विचार बदलते जाते हैं वैसे वैसे ही उसकी बाह्य अवस्था के रूप भी बदलते जाते हैं।

वास्तव में विचार ही मनुष्य में सब कुछ हैं । ये ही मनुष्य को दुनिया में मालामाल कर देते हैं और ये ही उसे मिट्टी में मिला देते हैं । विचारों से ही मनुष्य देवता सदृश बन जाता है विचारों से ही नारकी का रूप धारण कर लेता है । वास्तव में दैव और भाग्य कोई वस्तु नहीं है । भूलकर भी कभी दैव पर निर्भर नहीं रहना चाहिये । जहां तक हो सके, अच्छे भले विचारों को अपने मन में स्थान दो और दृढ़ संकल्प कर के उनके अनुसार अपनी प्रवृत्ति करो । बुरे और गंदे विचारों को मन से बिल्कुल निकाल डालो, फिर देखो यही दुनिया जिसे तुम आज दुःख और आपत्ति का घर समझ रहे हो तुम्हारे लिये सुख धाम और स्वर्गभूमि बन जायगी और जो कुछ तुम चाहोगे वह तुम्हें मिल जायगा ।

३—स्वास्थ्य और शरीर पर मन का प्रभाव।

शरीर मन का चाकर है। यह मन की आज्ञाओंका पालन करता है चाहे वे आज्ञायें संकल्प पूर्वक हों चाहे विना संकल्प की। अनुचित विचारों के अनुसार प्रवृत्ति करने से मनुष्य का शरीर शीघ्र रोगों में ग्रसित होकर दिन दिन कृश होने लगता है, परंतु उत्तम और सुन्दर विचारों के अनुसार प्रवृत्ति करने से मनुष्य के शरीर में शक्ति, यौवन और सौन्दर्य्य आता है।

जिस प्रकार मन का असर बाह्य अवस्था पर पड़ता है, वैसे ही मन का असर उसके स्वास्थ्य और शरीर पर भी पड़ता है, अर्थात जैसे मनुष्य के विचार होते हैं, उन्हीं के अनुसार उसका स्वास्थ्य और शरीर होता है। मृतक विचार रुग्ण शरीर के प्रगट होते हैं। रोग का विचार करने से रोग उत्पन्न होता है। भय के विचार उतनी ही तेज़ी से आदमी को मार डालते हैं, जितनी तेज़ी से बन्दूक़ की गोली। हज़ारों आदमी

जैसे चाहो वैसे बन जाओ।

निरन्तर भय से मरते रहते हैं। प्लेग अधिकतर उन्हीं लोगों को होता है, जिन्हें प्लेग से डर लगता है चिंता से मनुष्य का शरीर घुल जाता है और रोग उस में अपना घर कर लेता है। चिता की उपमा चिंता से दी जाती है। वास्तव में शरीर के लिये चिंता चिता के सदृश है। बुरे और गंदे विचारों से चाहे वे प्रवृत्ति में लाये भी न जावें, क्षण भर में शरीर की मशीन बिगड़ जाती है।

सत्यता: दृढ़ता, पवित्रता और प्रसन्नता के विचारों से शरीर में बल, पौरुष और सौंदर्य आता है। शरीर ऐसा कोमल और आकर्षणीय यंत्र है कि जिस प्रकार के विचार मन में आते हैं उनके अनुकूल तुरंत प्रवृत्ति करने लगता है और जैसे विचार होते हैं, भले या बुरे, उनके अनुसार शरीर पर उनका प्रभाव पड़ने लगता है।

जब तक मनुष्य गंदे विचारों को फैलाते रहते हैं, तब तक उनका खून बराबर गंदा और विषैला रहता है। पवित्र हृदय से पवित्र जीवन और पवित्र शरीर विकसित होता है। अपवित्र मन से अपवित्र जीवन और अपवित्र शरीर प्रगट होता हैं। विचार ही कार्य, जीवन और प्रकाश का सोता और चश्मा है, अतएव पहले सोते को पवित्र बना लो, फिर सब कुछ पवित्र हो जायगा।

स्मरण रक्खो, केवल भोजन के पदार्थों में परिवर्तन करने से तुम्हें कोई सहायता न मिलेगी, जब तक कि तुम अपने विचारों में परिवर्तन न करोगे। जब मनुष्य अपने विचारों को पवित्र कर लेता है तो फिर उसे अभक्ष्य पदार्थों की इच्छा ही नहीं रहती।

अच्छे विचार करने से अच्छी आदतें पैदा होती हैं। वह मनुष्य जो सन्त और महात्मा कहलाता है, परंतु अपने शरीर को जल में धोकर शुद्ध नहीं रखता, वह असलि में संत या महात्मा नहीं है। शरीर की शुद्धता मन की शुद्धता के साथ है, अर्थात् पहले मन की शुद्धि आवश्यक है और फिर साथ में ही, शरीर की शुद्धि। जिस मनुष्य ने अपने विचारों को दृढ़ और पवित्र बना लिया है, उसे महामारी आदि के विषैले कीड़ों से डरने की कोई ज़रूरत नहीं रहती, कारण कि मन की शुद्धि के साथ शरीर की शुद्धि का विचार अवश्य होता है। अतएव जिस मनुष्य के विचार पवित्र हैं और जिसका मन साफ़ है, उसे शारीरिक रोगों का कोई भय नहीं हो सकता।

यदि तुम अपने शरीर की रक्षा करना चाहते हो तो पहले अपने मन को वश में रक्खो। यदि तुम अपने शरीर में नव जीवन चाहते हो, तो पहले अपने मन को पवित्र और सुन्दर बनाओ। ईर्ष्या, द्वेष निराशा और भीरुता के विचारों से शारीरिक स्वास्थ्य और सौंदर्य का नाश हो जाता है। चिड़चिड़ापन अपने आप नहीं होता, किन्तु चिड़चिड़े विचारों से होता है झुर्रियां जिनसे मनुष्य की आकृति बिगड़ जाती हैं, क्रोध, मूर्खता और अभिमान के कारण पड़ जाती हैं, मैं एक स्त्री को जानता हूं जिसकी अवस्था ९६ वर्ष की है। उसके चेहरे पर युवती सदृश चमक दमक और भोलापन पाया जाता है। मैं एक अधेड़ अवस्था के पुरुष को भी जानता हूं, परंतु उसका चेहरा बड़ा बेडौल और भद्दा हो गया है। इनका कारण क्या है? यह कि वह स्त्री सदा प्रसन्न चित्त रहती है, कभी हतोत्साहित नहीं होती और न कभी किसी का बुरा चिंतवन करती है, परंतु

वह पुरुष सदा क्रोध में घुला करता है, चिंता में जला करता है और वासना में लिप्त रहता है। स्त्री थोड़े पर भी संतोष करती है, परंतु पुरुष अधिक पर भी असंतोषी रहता है।

जिस प्रकार साफ़ सुथरी हवा और रोशनी के बिना तुम्हारा कमरा सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सकता, उसी प्रकार हर्ष, आनंद, शांति और संतोष के विचारों को स्वतंत्रता से मन में स्थान दिये बिना तुम्हारा शरीर बलवान् नहीं हो सकता और तुम्हारी आकृति से तेज़, शांति और गम्भीरता प्रगट नहीं हो सकती।

बूढ़े आदमियों में कुछ के चेहरों पर तो सहानुभूति की, कुछ के चेहरों पर दृढ़ और पवित्र विचारों की और कुछ के चेहरों पर काम क्रोधादि कषायों की झुर्रियां दृष्टिगोचर होती हैं। कौन ऐसा मनुष्य है जो इन में पहिचान नहीं कर सकता ! जिन लोगों ने अपना जीवन भलाई और सचाई में व्यतीत किया है, उनका बुढ़ापा ढलते हुये सूर्य्य की तरह शांति और संतोष के साथ शरीर से निकल जाता है, अर्थात् भले पुरुषों का समय शांति से व्यतीत हो जाता है। मैंने थोड़े दिन हुए एक तत्त्ववेत्ता को मृत्यु-शय्या पर लेटे हुये देखा था। आयु की अपेक्षा तो वह बूढ़ा अवश्य था, परंतु और किसी अपेक्षा से उसे बूढ़ा नहीं कहा जा सकता था, जैसे आनंद और शांति से उसने अपना जीवन व्यतीत किया था वैसे ही आनंद में उसने अपने प्राण तजे। अंत समय तक वह आनंद और शांति में मग्न रहा।
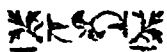
शारीरिक व्याधियों को दूर करने के लिए सुन्दर और मनोहर विचारों से बढ़कर और कोई औषधि नहीं है। शोक और

दुःख को मिटाने के लिये नेकनियती से बढ़कर और कोई चीज नहीं है। दूसरों से ईर्ष्या द्वेष रखना, उनके विषय में संदेह करना तथा झूंठा त्याग करना-इस प्रकार के कुविचार मे निरंतर डूबे रहना, मानो अपने बनाये हुये बंदी-गृह में बंदी होकर रहना है। परंतु सब का भला चितवन करना, सब को अच्छा समझना, सबसे मेल जोल रखना और शांति से सब के उत्तम गुणों को देखना-इस प्रकार के निःस्वार्थ विचार साक्षात् स्वर्ग के द्वार हैं और जो मनुष्य प्रति दिन प्रत्येक जीव के विषय में मैत्री-भाव रखता है और उसके हित का चितवन करता है उसे अवश्य शांति मिलेगी और वह शांति परम और स्थायी होगी।
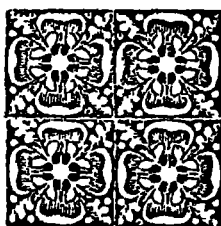
४–विचार और उद्देश्य ।

विचार विना उद्देश्य के कार्यकारी नहीं है। कार्य-सिद्धि के लिए विचार और उद्देश्य दोनों एक होने चाहिये, अर्थात् जो विचार हो वही उद्देश्य हो और जो उद्देश्य हो वही विचार हो, परंतु दुनिया में अधिकतर मनुष्य ऐसे है कि जो अपने विचार रूपी नौका को जीवन रूपी समुद्र में बह जाने के लिए छोड़ देते है। अर्थात् अपने विचारों को योंही डांवाडोल बहने देते है और कोई उद्देश्य नहीं रखते है। बेतुके विचार करना, कोई निश्चय अपनी दृष्टि के सामने न रखना। अवगुण है। अतएव जो लोग अपनी विचार रूपी नौका को विपत्ति रूपी पहाड़ से टक्कर खाने से बचाना चाहते है, उन्हे उचित है कि वे उसे योंही बहने न दें।

जिन लोगों के जीवन का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता, वे छोटी मोटी चिंताओं, विपत्तियों, दुःखों और कष्टों के सहज

में ही शिकार हो जाते है। ये सब निर्बलता के चिन्ह हैं और निर्बलता से निश्चय से पापों और दुष्कर्मों के सदृश दुःख, हानि और असफलता उठानी पड़ती है, कारण कि शक्ति का प्रकाश करने वाले जगत् मे निर्बलता नहीं ठहर सकती।

प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि अपना एक निश्चित् उद्योग बना ले और उसकी पूर्ति मे निरन्तर उद्योग करता रहे। उसी उद्देश्य को उसे अपने विचारों का केन्द्र बना लेना चाहिये। अर्थात् सदैव उसी का विचार करते रहना चाहिये। ऐसा करने से उसके उद्देश्य की अवश्य पूर्ति हो जायगी, यदि उसका उद्देश्य आत्मिक सुख होगा, तो उसे आत्मिक सुख मिल जायगा और यदि उसकी इच्छा सांसारिक पदार्थों की होगी, तो उसे सांसारिक पदार्थ मिल जांयगे। मनुष्य को उचित है कि उद्देश्य को अपना परम कर्त्तव्य समझे और उस की प्राप्ति मे भरसक प्रयत्न करे, यहां तक कि अपने जीवन को भी उस के निमित्त अर्पण करदे और अपने विचारों को कल्पनाओं, वासनाओं और व्यर्थ की बातों की ओर जाने से रोके। अपने विचारों को एक केन्द्र पर लाने और इन्द्रियों को वश मे करने का यही सर्वोत्तम राज-मार्ग है, यदि मनुष्य अपनी निर्बलता पर विजय प्राप्त न करने के कारण अपने उद्देश्य की पूर्ति में पुनः पुनः असफल भी होता रहे तो भी इस निरन्तर के उद्योग से जा दृढ़ता उस के चरित्र और स्वभाव मे उत्पन्न होगी, वह उस को सफलता के मार्ग पर लगा देगी और उससे आगे बढ़ कर वह भविष्य में अवश्य विजय और सफलता प्राप्त कर लेगा।

जिन लोगों को अपने उद्देश्य का बोध नहीं है, उन्हे उचित है कि वे अपने विचारों को अपने कर्त्तव्य के समीचीन रूप से

पालन करने में लगावें, चाहे वह कर्त्तव्य कितना ही छोटा क्यों न हो, अर्थात् इसकी कोई परवाह न करें कि कर्त्तव्य छोटा है या बड़ा। उनका काम कर्त्तव्य पालन करने का है, सो किये जायं। केवल इसी रीति से हम अपने विचारों को एकत्र करके एक विषय की ओर लगा सकते है और अपने साहस और दृढ़ता को बढ़ा सकते हैं और जब हम इस प्रकार अपने विचारों को एक विषय की ओर लगाकर साहस और श्रम से काम करेंगे तो फिर कोई काम भी ऐसा नहीं है जिस को हम न कर सकेंगे। साहस के आगे कठिन से कठिन काम भी सरल हो जाता है, ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप कर सकते हैं।

निर्बल से निर्बल आत्मा वाला मनुष्य भी अपनी निर्बलता को जानकर और इस बात की सत्यता का विश्वास करके कि केवल उद्योग और अभ्यास से ही शक्ति बढ़ सकती है, तुरंत उद्योग करना शुरू कर देगा और अविश्रांत श्रम साहस और उद्योग के बल से अवश्य उन्नति कर लेगा और अंत में अपने में ईश्वरीय शक्ति को प्राप्त कर लेगा।

जिस प्रकार वह मनुष्य जिसका शरीर दुर्बल है, सावधानी से नित्यप्रति व्यायाम करके अपने शरीर को सुडौल और बलिष्ट बना सकता है; उसी प्रकार वह मनुष्य जिसके विचार निर्बल हैं अच्छे और भले विचारों को अपने मन में निरंतर स्थान देने से, अपने विचारों को दृढ़ बना सकता है।

जो मनुष्य निर्बलता और स्वभाव की चंचलता को दूर कर देता है और किसी उद्देश्य विशेष को अपनी दृष्टि के सामने

रख कर विचार करने लगता है, वह उन बलवान् आत्माओं की श्रेणी में प्रवेश कर लेता है जो असफलता को सफलता का एक मार्ग समझते हैं प्रत्येक अवस्था से अपना कार्य निकालते हैं, जिनके विचार दृढ़ होते हैं और जो निर्भय होकर उद्योग करते हैं और उत्तम रीति से अपने काम को पूरा करते हैं, मनुष्य को उचित है कि अपने उद्देश्य को अपनी दृष्टि के सामने रखकर उसकी पूर्ति के लिये अपने मनमें एक सीधा मार्ग बना ले और बिना इधर उधर देखे बराबर उसपर चला जाय। भय और संदेह को एकदम मनसे निकाल देना चाहिये, कारण कि ये तोड़ फोड़ कर देनेवाली चीजें है। इनके कारण मनुष्य सीधे मार्ग से हट जाता है और इधर उधर मारा मारा फिरता है और सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, सारे उद्योग निष्फल जाते हैं। भय और संदेह के विचारों से न कभी कोई काम पूरा हुआ और न हो सकता है। उनसे सदा असफलता ही होती है, जहां भय या संदेह का मन में प्रवेश हुआ, उसी समय साहस टूट जाता है काम करने की शक्ति जाती रहती है और विचार निर्बल पड़ जाते है।

जब हमको इस बात का ज्ञान हो जाता है कि हम अमुक काम को कर सकते हैं; तब हमारे मन में उस काम का विचार पैदा होता है, भय और संदेह ज्ञान के कट्टर शत्रु है। जो मनुष्य भय और संदेह को अपने मन में स्थान देता है और उन्हे दूर नहीं करता, वह पग पग पर ठोकर खाता है और अंत मे असफलीभूत रहता है। जिस मनुष्य ने भय और संदेह को जीत लिया है उस ने असफलता को जीत लिया अर्थात उसे कभी निराशा या असफलता नही होती, उस के प्रत्येक विचार

में शक्ति पाई जाती है और वह बड़ी वीरता से सम्पूर्ण कठिना- इयों का सामना करता है और बुद्धिमानी से उन पर विजय प्राप्त करता है । उस के उद्देश्यों के पौधे ठीक समय पर लगाये जाते हैं और वे ऐसी उत्तमता से बढ़ते और फल लाते हैं कि उन के फल समय से पहले झड़कर ज़मीन पर नहीं गिरते । अर्थात ऐसे मनुष्य के उद्देश्य अवश्य पूर्ण होते है ।

यदि उद्देश्य के साथ उस के लिये निर्भीक और प्रबल विचार भी शामिल हों, तो उस विचार मे उत्पत्ति शक्ति आजाती है, जिस मनुष्य को इस बात का ज्ञान है, उस का चित्त चंचल और चलायमान नही होता और उस के हृदय मे क्षणिक और विचित्र तरंगे नहीं उठती । वह पहले से अधिक उत्तम और प्रबल अव- स्था मे हो जाता है । जो मनुष्य ऐसा करता भी है अर्थात् जिनका विचार अपने उद्देश्य की पूर्ति में निशङ्क और निर्भय रूप से होता है, वह अपनी मानसिक शक्तियों को भी अपने वश मे कर लेता है कहने का सारांश यह है कि जिस मनुष्य को इस बात का केवल ज्ञान ही होता है कि यदि निर्भय होकर उद्देश्य के साथ विचार को शामिल किया जाय तो मनुष्य में दृष्टि सृष्टि की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, अर्थात वह जहां और जो कुछ चाहे पैदा कर सकता है, वह उस मनुष्य से हजार गुना अच्छा है कि जिसे अभी इस बात का ज्ञान भी नहीं है और जिस मनुष्य की इसके अनुसार प्रवृत्ति भी होती है, अर्थात् जिस मनुष्य का विचार अपने उद्देश्य की ओर निर्भय रूप से होता है, वह उस से भी हज़ार गुना अच्छा होता है। उस की मानसिक शक्तियां उसके वश में होती है और वह अपने मनोबल से जो चाहे काम कर सकता है ।

५—सफलता के लिए मन कहाँ तक काम करता है।

जो कुछ मनुष्य प्राप्त कर लेता है अथवा जिसके प्राप्त करने में वह असफल रहता है, वह सब उसके ही मनोगत विचारों का परिणाम है। इस जगत में जहां पूर्णरूप से नियम, न्याय और विधि का शासन है और कोई काम भी अनियम नहीं होता, हरएक आदमी की भारी ज़िम्मेवारी होनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्य अपनी निर्बलता और सबलता, पवित्रता और अपवित्रता का स्वयं उत्तरदाता है। वे उसी की हैं, दूसरे की नहीं। दूसरे से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। उन अवस्थाओं का पैदा करनेवाला वह स्वयं है, कोई दूसरा नहीं और उनका बदलने वाला भी वह स्वयं है, कोई दूसरा नहीं है। भावार्थ जैसी भी जिस मनुष्य की दशा है, वह उसी की है, किसी दूसरे की नहीं है। मनुष्य को जो कुछ दुःख सुख होता है,

यह सब उसी के विचारों से होता है। जैसा कोई चाहता है वैसा ही वह हो जाता है। जैसा कोई आदमी विचार करता रहता है, वैसी ही दशा में वह रहता है।

कोई बलवान् मनुष्य उस समय तक किसी निर्बल की सहायता नहीं कर सकता, जब तक कि निर्बल मनुष्य स्वयं उससे सहायता लेने के लिये तैयार न हो और उस समय भी यह जरूर है कि निर्बल मनुष्य स्वयं ही बलवान् बने और स्वयं ही अपने उद्योग से उस शक्ति को प्राप्त करे जिसकी वह दूसरों में सराहना करता है। सारांश यह है कि यदि वह चाहे तो स्वयं ही अपनी अवस्था को बदल सकता है, कोई दूसरा मनुष्य नहीं बदल सकता।

अब तक प्रायः लोगों का ऐसा विचार था और वे यह कहा भी करते थे कि दुनिया में अनेक मनुष्य इस कारण से दास बने हुए हैं कि अमुक व्यक्ति अन्यायी है, वह अन्याय और अत्याचार करता है, अतएव हमें ऐसे दुष्ट मनुष्य से घृणा करनी चाहिए, परंतु अब विचार शील मनुष्यों की राय इसके प्रतिकूल होती जाती है। अब वे यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति इस कारण अन्यायी और अत्याचारी है कि अनेक मनुष्य स्वयं दास बने हुए हैं और दासत्व को सहन कर रहे हैं। अतएव हमें दासों से घृणा करनी चाहिये। असिल बात यह है कि दास और अत्याचारी अज्ञानता मे दोनों एक दूसरे के सहायक हैं और यद्यपि वे प्रत्यक्ष में एक दूसरे को दुःख पहुंचाते हुए मालूम होते हैं, परंतु वास्तव में वे स्वयं ही अपने को दुःख पहुंचाते हैं। जिस मनुष्य को पूर्ण ज्ञान है, वह दुःखी मनुष्य

की निर्बलता और अन्यायी मनुष्य की निर्दयता में एक ही कानून को काम करते हुए देखता है । जिस मनुष्य में पूर्ण प्रेम है, वह दोनों अवस्थाओं में दुःख देखता है, इसलिये दोनों में से किसी को भी दोष नहीं लगाता और जिस मनुष्य में पूर्ण दया और अनुकम्पा है, वह दुःखी और अन्यायी दोनों को अपनी छाती से लगाता है । परंतु हां जिसने अपनी निर्बलता को जय कर लिया है और सम्पूर्ण स्वार्थयुक्त विचारों को सर्वथा त्याग दिया है, वह मनुष्य न तो स्वयं दूसरों पर अन्याय करता है और न दूसरे उस पर अन्याय करते हैं । वह स्वतन्त्र और स्वाधीन है । मनुष्य अपने विचारों को उच्च बनाने से ही उन्नति करता है और विजय और सफलता लाभ कर सकता है । यदि वह अपने विचारों को उच्च बनाने में सङ्कोच करेगा तो वह पतित, निर्बल और निराश रहेगा ।

सांसारिक इच्छाओं में से भी किसी के प्राप्त करने से पहले यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने विचारों को इन्द्रिय-लोलुपता विषय-वासना और दासत्व से मुक्त रक्खे । सफलता लाभ करने के लिये यह आवश्यक नहीं कि स्वार्थ और वासना का सर्वथा त्याग कर दिया जाय, परन्तु हां कुछ न कुछ अंश तो अवश्य ही त्याग देना चाहिये । जिस मनुष्य का विचार मुख्यतया विषय-वासना की ओर है, वह न तो स्पष्ट रूप से किसी विषय पर विचार कर सकता है और न किसी काम के करने का नियमपूर्वक कोई उपाय सोच सकता है । न उसे अपनी गुप्त शक्तियों का पता लग सकता है और न वह उन्हे बढ़ा सकता है । हर एक काम में उसे असफलता रहती है । उसने

अपने विचारों को अपने वश में रखना नहीं सीखा है, इसलिए वह इस योग्य नहीं कि ठीक ठीक अपने कार्यों का प्रबन्ध कर-सके और भारी जिम्मेवारियों को अपने ऊपर ले सके। वह स्वतंत्रता से अपना काम करने और अपने पैरों पर आप खड़ा होने के अयोग्य है। वह अपने उन कतिपय विचारों की सीमा से, जिन्हें उसने चुन लिया है, बाहर नहीं जा सकता।

दुनिया में उस समय तक कोई उन्नति या सफलता नहीं हो सकती, जब तक कि कुछ हानि न उठाई जाय और स्वार्थ की आहुति न दी जाय। जितना अधिक मनुष्य अपनी विषय वासनाओं का त्याग करेगा और अपने मन का अपने उद्देश्य की पूर्ति के उपायों में लगायेगा, तथा आत्म-निर्भरता अर्थात् अपने ऊपर विश्वास करना सीखेगा, उतना अधिक वह सफलता लाभ करेगा। जितना ऊँचा वह अपने विचारों को बनायेगा, उतना ही अधिक वह वीर, साहसी, सच्चा और ईमानदार हो जायगा, उतनी ही अधिक उसको सफलता होगी और उतने ही अधिक पवित्र और स्थायी उसके कार्य होगे।

दुनिया में लालची, बेईमान और दुराचारी मनुष्य कभी नहीं फलते, चाहे ऊपर से कभी कभी ऐसा देखने में भले ही आता हो। प्रकृति उन्हीं लोगों की सहायता करती है जो सच्चे, दयालु और धर्मात्मा होते हैं। जब जब जितने महापुरुष हुए हैं। सभी ने भिन्न भिन्न रूप से इस बात को प्रकट किया है। जो मनुष्य इसको स्वयँ जानना और सिद्ध करना चाहता है, उसे चाहिए कि अपने विचारों को उच्च बनाकर दिन दिन अधिक धर्मात्मा बनने का उद्योग करता रहे।

मानसिक सफलतायें उन विचारों का परिणाम है जिनको ज्ञान प्राप्ति की खोह में लगाया जाय अथवा जिनको प्रकृति की सुन्दर और रमणीक वस्तुओं की ओर आकर्षित किया जाय। कभी कभी लोग ऐसी सफलताओं को लोभ और स्वार्थ-वश समझा करते हैं, परंतु वास्तव में वे लोभ और स्वार्थ-जन्य नहीं हैं किंतु बहुत दिनों तक जी तोड़कर श्रम और उद्योग करने और पवित्र और निस्वार्थ विचारों के मन में लाने से प्रगट हुई हैं।

आत्मिक सफतायें उच्च और धार्मिक विचारों का परिणाम हैं। जो मनुष्य निरंतर ऐसे विचारों का मन में स्थान देता रहता है और पवित्र और निःस्वार्थ वस्तुओं का ध्यान करता रहता है, उसका चरित्र अवश्यमेव उत्तम और विशुद्ध हो जायगा और वह निश्चय से सुखी और भाग्यवान बन जायगा और महत्व और प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेगा। ऐसे मनुष्य का उच्च पद पर पहुँचना और सच्चरित्री होना ऐसा ही निश्चित है जैसा कि सूर्य का मध्यान्ह रेखा पर पहुँचना और चन्द्रमा का पूर्णिमा के दिन पूर्ण रूप से प्रकाशित होना।

प्रत्येक कार्य मे सफलता निरंतर के उद्योग और विचार से प्राप्त होती है। कोई कार्य ऐसा नहीं है कि जिस में उद्योग और विचार के बिना सफलता प्राप्त होगई हो। शील, समय, दृढ़ता, पवित्रता, सदाचार और सद्विचारों से मनुष्य उन्नति करता है और ऊँचा चढ़ता है, परंतु विषय-वासना आलस्य, अपवित्रता, दुराचार और कुविचारों से वही मनुष्य अवनति करता है और नीचे गिरता है।

सम्भव है कि एक मनुष्य दुनिया में अद्भुत सफलता प्राप्त

कर ले और आत्मिक जगत मे भी विशेष उन्नति कर ले और फिर वही मनुष्य स्वार्थ, मान, अहंकार, मात्सर्य और दुराचार के विचारों को मन में स्थान देने से पदच्युत हो जाय और दुःख और आपत्ति के कूप मे गिर पड़े।

जो सफलता सद्विचारों से प्राप्त की गई है, उसे हम सावधान रह कर ही सुरक्षित रख सकते है। प्रायः बहुत से मनुष्य सफलता लाभ कर के उसकी रक्षा नही करते, जिस का यह परिणाम होता है कि वे शीघ्र ही असफलता की दशा में आ जाते है।

सर्व प्रकार की सफलताये चाहे वे शारीरिक हो चाहे मानसिक और चाहे आत्मिक सद्विचारों का परिणाम है। सब एक नियम के अधीन हैं और एक ही विधि पर निर्धारित है। यदि कुछ अन्तर है तो केवल उद्दिष्ट पदार्थ का है।

जो मनुष्य कुछ नही करना चाहता, उसे स्वार्थ की आहुति देने और इन्द्रियों के दमन करने की आवश्यकता नहीं है, परंतु जो मनुष्य कुछ करना चाहता है उसके लिये इन बातों की अत्यन्त आवश्यकता है। जितना मनुष्य काम करना चाहता है उतनी ही आहुति उसे देनी होगी। बिना आहुति दिये कोई भी काम नहीं हो सकता चाहे वह कितना ही छोटा और कितना ही बड़ा हो।

६—स्वप्न और आदर्श।

सच तो यों है कि स्वप्न देखने वाले इस संसार के मुक्ति दाता हैं। जैसे स्थूल प्रत्यक्ष जगत अदृष्ट जगत् के सहारे स्थिर है, उसी प्रकार दुनिया के लोगों को उनके पापों, दुःखों और नीच कर्मों में उन एकान्तवासी मनुष्यों के सुन्दर स्वप्नों और विचारों से सहारा मिलता है। मनुष्य जाति उनको कभी नहीं भूल सकती और उनके आदर्शों को कभी नष्ट नहीं होने देती, कारण कि वह उन विचारों के द्वारा ही जीवन व्यतीत करती है और उनको वास्तविक समझती है जिनको वह एक दिन अपनी आंखों से स्वयं देखेगी और अनुभव करेगी।

कवि, लेखक, चित्रकार, शिल्पकार, ऋषि महात्मा भावी जगत् के निर्माता और स्वर्ग के रचयिता हैं। उन्हीं लोगों के कारण दुनिया सुन्दर दिखाई देती है। उन्होंने ही इसमें जीवन

फूंका है, यदि वे न होते तो दुनिया में परिश्रमी लोगों का अभाव हो जाता।

जिस मनुष्य के मन में कोई सुन्दर विचार या उच्च आदर्श विद्यमान है वह एक दिन उसे अवश्य देख लेगा। कोलम्बस के मन में दूसरी दुनिया के अस्तित्व का विचार समाया हुआ था और उसने उसे मालूम करके छोड़ा। कोपरनिकस (Copernicus) के मन में यह विचार जमा हुआ था कि इस दुनिया के अतिरिक्त और भी बहुत सी दुनिया हैं। अंत में एक दिन उसने इस विचार को प्रत्यक्ष रूप में देख लिया। बुद्धदेव ने एक परम सुन्दर और शान्तिमय आत्मिक जगत का स्वप्न देखा था। एक दिन उसने उसमें प्रवेश पा लिया।

अपने स्वप्नों और विचारों को अपने मन में रक्खो, अपने आदर्शों को सुरक्षित रक्खो। वह राग जो तुम्हारे मन में जोश मारता है, वह सौंदर्य की आकृति जो तुम्हारे मन के सामने फिरती है, वह प्रेम-मूर्ति जो तुम्हारे सब से अधिक पवित्र और सुन्दर विचारों के वेश में सुसज्जित होती है, इन सब को ऐसा प्रिय समझो मानों वे तुम्हारी आंखों की पुतलियां हैं, कारण कि उनमें से ही सम्पूर्ण सुखावस्थाओं और स्वर्गीय पदार्थों का प्रादुर्भाव होता है। यदि तुम इन सुन्दर विचारों पर दृढ़ रहे, तो इन्हीं में से अंत में तुम्हारी दुनिया बन जायगी। वास्तव में किसी वस्तु की इच्छा ही करना उसमें सफल होना है। जिस पदार्थ की इच्छा की जायगी वह अवश्य मिलेगी और जिस काम के लिये उद्योग किया जायगा, उसमें निश्चय से सफलता होगी। यह सम्भव नहीं कि मनुष्य की नीच वासनायें तो पूर्ण

हो जायं और उसकी पवित्र आकांक्षायें अपूर्ण रह जायँ। यह बात नियम-विरुद्ध है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। केवल मांगने की देर है। जहां तुमने मांगा, तुरंत तुम्हे मिल जायगा। उच्च और उत्तम विचारों के स्वप्न देखा करो और जैसे तुम स्वप्न देखोगे वैसे ही तुम बन जाओगे। तुम्हारा स्वप्न इस बात का सूचक है कि तुम एक दिन वैसी ही हालत मे पहुँच जाओगे। तुमने जो अपने मन मे आदर्श स्थापित कर रक्खा है, वह इस बात को प्रगट करता है कि तुम एक दिन उसे वास्तविक रूप मे देख लोगे।

बड़े से बड़ा काम भी पहले कुछ काल तक स्वप्नवत रहता है। देखो बड़ का पेड़ बड़ की बीजी के भीतर बन्द रहता है। चिड़िया अंडे मे रहती है और आत्मा के उच्चतम विचार मे एक जीता जागता देव चलता फिरता है स्वप्न और विचारों से ही असली चीजे प्रगट होती है। मानो स्वप्न और विचार असली चीजों की पौद है।

सम्भव है कि तुम्हारी स्थिति या बाह्य अवस्था तुम्हारी इच्छानुकूल न हो, परंतु यदि तुम अपना आदर्श नियत करना और उसकी प्राप्ति के लिये उद्योग करना शुरू कर दो तो तुम्हारी अवस्था ऐसी न रहेगी, अवश्य सुधर जायगी, परन्तु यदि तुम अपना आदर्श नियत न करो और उसकी प्राप्ति के लिये उद्योग न करो, तो तुम्हे कभी सफलता नही हो सकती। तुम्हारी दशा कभी नहीं बदल सकती। तुम जिस दुःखावस्था मे हो उसी मे रहोगे। एक नवयुवक है जो अत्यन्त निर्धन है। सवेरे से शाम तक एक ऐसे तंग और अंधेरे कारखाने मे काम करता

रहता है कि जो उसके स्वास्थ्य के लिये हानिकर है. वह अनपढ़ है और सभ्यता और शिष्टाचार से भी अनभिज्ञ है, परन्तु वह उस कारखाने में रहकर भी अच्छी चीजों के स्वप्न देखता है और बुद्धिमानी सभ्यता और सुन्दरता का विचार करता रहता है। वह अपने मन में आदर्श जीवन का चित्र खींचता है और उदारता और स्वाधीनता के भाव उसके हृदय तट तक अपना अधिकार जमा लेते हैं। अशांति उसे काम करने के लिये उत्तेजित करती है और वह अपना बचा खुचा समय और धन चाहे वह कितना ही थोड़ा क्यों न हो, अपनी गुप्त शक्तियों और साधनों की वृद्धि करने में लगाता है। बहुत जल्दी उसके मन में ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि फिर वह उस कारखाने में नहीं रह सकता। कारखाना उस के स्वभाव के ऐसा प्रतिकूल हो गया है कि जिस प्रकार फटे पुराने कपड़े को बदन पर से उतार देते हैं, उसी प्रकार अब वह अपने नवीन विचारों के अनुसार सुअवसर मिलते ही उस कारखाने को सदैव के लिये छोड कर चला जाता है। कुछ साल के बाद हम उसी युवक को एक बड़ा आदमी देखते हैं? उसने अपने मन की कुछ शक्तियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया है और उनके द्वारा इस दुनिया में उसका बड़ा मान और अधिकार है और भारी जिम्मेवारी के काम उसके सुपुर्द हैं। जब वह बोलता है तो सब लोग उसके मुंह की ओर देखते हैं और उनकी हालतें बदल जाती हैं। स्त्री पुरुष, युवा वृद्ध सभी उसकी बातों को ध्यान से सुनते हैं और उसके उपदेश से अपने चरित्र को सुधारते हैं। वह सूर्य के समान सबके बीच में चमकता हुआ दिखाई देता

है और असंख्याते मनुष्य उसके चहुं ओर बैठे रहते हैं, मानो यह सबका नेता है और सब को सन्मार्ग बतलाता है। उसने अपनी युवावस्था के स्वप्न को साक्षात देख लिया है, अर्थात अपने आदर्श को प्राप्त कर लिया है। जो उसने सोचा था, अब वह उसे मिल गया है। जो कभी स्वप्न था, अब वह सत्य हो गया है।

प्रिय पाठकगण! तुम भी अपने मन के विचारों को चाहे वे अच्छे हों, चाहे बुरे चाहे अच्छे बुरे दोनों मिले हुए हों, एक दिन साक्षात देख लोगे। जिन बातों की तुम इच्छा करते हो, चाहे वे कैसी ही हों, एकदिन तुम्हे अवश्य मिल जांयगी, कारण कि तुम सदैव उन्हीं बातों का चिन्तवन करते रहते हो और उन्ही के प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हो। जैसे तुम चाहोगे वैसे ही बन जाओगे। जैसे तुम्हारे विचार होंगे, उनके अनुकूल ही तुम्हे उनका फल मिल जायगा। जो तुम कमाओगे, वही तुम को मिलेगा। न कम और न ज्यादा। तुम्हारी स्थिति और बाह्य अवस्था चाहे जैसी हो, जैसे तुम स्वप्न देखोगे, जैसे तुम्हारे मन विचार होंगे और जो आदर्श तुम अपना बनाओगे उनके अनुसार ही तुम अपनी उन्नति या अवनति करोगे। तुम्हारी इच्छा जितनी छोटी और नीची होगी, उतने ही छोटे और नीचे तुम बनोगे और जितनी बड़ी और ऊंची होगी, उतने ही बड़े और ऊंचे बनोगे। सम्भव है कि जो मनुष्य आज कुली का काम कर रहा है और फटे पुराने कपड़े पहिन रहा है, वही कल को उन्नति करता २ एक बड़ा इञ्जीनियर बन जाय और नये नये इञ्जिनों का आविष्कार करे। जो मनुष्य आज पैसे पैसे

को तरसता है, जिसे खाने को भर पेट भोजन भी नहीं मिलता, वही कल को लाखों आदमियों का पोषक और रक्षक बन जाय। एवं जो मनुष्य आज, विषय-वासना में लिप्त हो रहा है और इन्द्रिय-सुख में ही सुख मान रहा है, वही कल को विषय-वासना को तिलाञ्जली देकर आत्मानुभव में लीन होजाय और कर्मों के जाल को काट कर परम पद को प्राप्त करले और संसार में भूले भटके प्राणियों को सन्मार्ग पर लगा दे।
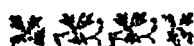
मूर्ख, आलसी और विचारशून्य मनुष्य असली चीजों को तो देखते नही, केवल उनके बाहरी नतीजों को देख कर भाग्य को उलाहना देने लगते है और दैव का रोना रोते है। किसी मनुष्य को धन कमाते और धनवान बनते देख कर वे कहा करते है कि ईश्वर की देन को देखो, यह मनुष्य कैसा भाग्यवान है। मिट्टी मे भी हाथ डालता है तो रुपया ही निकलता है। दूसरे मनुष्य को विद्वान् होते देख कर वे चिल्ला उठते है कि देखो, इस पर ईश्वर की कैसी कृपा है। एक तीसरे मनुष्य में ऋषियों जैसे गुण और अतुल्य प्रभाव देखकर वे बोल उठते है कि ईश्वर की शक्ति अपरम्पार है, वह चाहे सो करे। देखो इस मनुष्य को कैसी सफलता प्राप्त है, परन्तु वे मूर्ख यह नहीं देखते कि इन लोगों को इतना अनुभव प्राप्त करने के लिये कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, कितनी आपत्तियां उठानी पड़ी है और कितनी बार असफलता का मुंह देखना पड़ा है। उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि इनको अपनी इच्छा की पूर्ति करने के लिये अपने आदर्श को प्राप्त करने के लिये अर्थात् इस अवस्था पर पहुंचने के लिये स्वार्थ

को कितनी आहुति देनी पड़ी है, कितना निर्भीक होकर उद्योग करना पड़ा है और कितना विश्वास और श्रद्धान करना पड़ा है। वे नहीं जानते कि इनके मार्ग में कितनी विघ्न बाधाएं आईं और इन्होंने किस वीरता के साथ उनको दूर किया। वे केवल इनकी वर्तमान सुख और प्रकाश्य अवस्था को देखते हैं और उसको भाग्य बताते हैं। इनका मार्ग कितना विषम और कंटकमय रहा है, इसकी ओर उनका ध्यान भी नहीं जाता। उनको तो केवल इनका वर्तमान सुन्दर रमणीक स्थान दिखाई देता है और इसको व इनका सौभाग्य बताते हैं वे केवल परिणाम को देखते हैं और उसको दैव बताते हैं। उस परिणाम के लिये किन किन उपायों का अवलम्बन करना पड़ा है, इसको नहीं देखते।

मनुष्य को सम्पूर्ण कार्यों में पहले उद्योग करना पड़ता है, पीछे उसे उसका फल मिलता है। जैसा और जितना उद्योग होता है, वैसा और उतना ही फल मिलता है। उद्योग से ही फल का अनुमान किया जा सकता है दैव और भाग्य कोई वस्तु नहीं है। जो कुछ मनुष्य के पास है और जो कुछ उसे मिलता है, वह सब उद्योग से मिलता है। जिसे ईश्वर की देन कहते हो, वह तथा बल, शक्ति, धन, बुद्धि, इत्यादि सभी मानसिक, शारीरिक और आत्मिक वस्तुएं श्रम और उद्योग के फल है। ये वे विचार है जो पूर्ण हो गए हैं और वे स्वप्न है जो वास्तविक रूप में प्रगट हो गए हैं। कहने का सारांश यह है कि जैसे विचार तुम अपने मनमें करोगे, जो उद्देश्य तुम अपने जीवन का बनाओगे, उसके अनुकूल ही तुम बन जाओगे।

७-शान्ति।

मन की शांति ज्ञान एक सुन्दर रत्न है। यह मन को बहुत दिनों तक दृढ़ता से वश में रखने से प्राप्त होती है। किसी मनुष्य में शांति का होना इस बात का चिन्ह है कि उसका अनुभव परिपक्व हो गया है और उसको मानसिक विचार के नियमों और साधनों का साधारण से अधिक ज्ञान होगया है। जितना मनुष्य को इस बात का ज्ञान होता जाता है कि मेरा अस्तित्व मानसिक विचार से हुआ है, उतना ही वह शांत चित्त होता जाता है, कारण कि यह ज्ञान उसको इस बात के समझने के लिये उत्तेजित करता रहता है कि वह अन्य मनुष्यों के अस्तित्व को भी विचार-जन्य समझे और ज्यों ज्यों उस की सद्बुद्धि बढ़ती जाती है और वह कार्य कारण के भाव से वस्तुओं के आन्तरिक सम्बन्ध को अधिक स्पष्ट रूप से देखता जाता है, त्यों त्यों वह गुल गपाड़ा करना फूं फां करना, बेकल

होना और शोक और पश्चाताप करना बंद करता जाता है और दृढ़, शांत और गंभीर बनता जाता है।

शांत चित्त मनुष्य अपने को वश में रखना जानता है, इसी कारण से वह इस बात को भी अच्छी तरह जानता है कि किस प्रकार दूसरों की सेवा करे और उनको लाभ पहुंचावे। वे लोग भी बदले में उसके आत्मिक बल की प्रशंसा करते हैं और इस बात की आवश्यकता प्रतीत करते है कि उससे कुछ सीखें और उस पर श्रद्धा और विश्वास करें। जितना अधिक मनुष्य शांत होता जाता है, उतनी ही अधिक उसे सफलता प्राप्त होती जाती है, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है और भलाई करने की शक्ति उसमे पैदा होती जाती है। साधारण से साधारण दूकानदार भी यदि वह अपने मन को अपने वश में रखना सीख ले और दृढ़ता प्राप्त करले तो अपने कारबार मे उन्नति देखेगा और उसके ग्राहकों की संख्या दिन दिन बढ़ती जायगी, कारण कि लोग उसी दूकानदार से व्यवहार करना पसंद करते है जिसके स्वभाव में दृढ़ता और गम्भीरता है और जो सब के साथ नर्मी से पेश आता है।

गम्भीर और शांत-चित्त मनुष्य के साथ सब लोग प्रेम और आदर पूर्वक व्यवहार करते हैं। वह एक सूखी और प्यासी ज़मीन पर छायादार वृक्ष के समान है, अथवा एक तेज़ आंधी मे बचाने के लिये चट्टान है। कौन व्यक्ति ऐसा है जो शांत, गम्भीर और मृदुस्वभाव वाले मनुष्य से प्रेम नहीं करता? चाहे ज़ोर से मेंह बरसे, चाहे कड़ी धूप पड़े और चाहे, जो परिवर्तन हो शांत और गम्भीर प्रकृति के मनुष्य इनकी कोई परवा नहीं

करते, कारण कि वे सदैव शांत और प्रसन्न-चित्त रहते हैं। शांति आत्मोन्नति का सब से अन्तिम पाठ है। यह वही वस्तु है जिसे जीवन का फूलना और आत्मा का फलना कहते हैं। इसका मूल्य ज्ञान और बुद्धि के समान है। चांदी से क्या कुंदन से भी अधिक लोग इसकी कद्र करते हैं। देखो शांतिमय जीवन के सामने रुपया पैसा कमाने की इच्छा कैसी नीच और तुच्छ जान पड़ती है। शांति का जीवन वह जीवन है कि जो सच्चाई के समुद्र की तह में लहरों से इतना नीचे रहता है कि वहां सदैव सुनसानी रहती है और आंधी तूफान का गुज़र भी नहीं होता।

हम ऐसे कितने ही आदमियों को जानते हैं कि जो अपनी ज़िन्दगी को कडुवा बना लेते है, तेज़ स्वभाव होने के कारण क्रोध में आकर सारी सुन्दरता और मीठे पन का नाश कर देते हैं, चाल चलन को बिगाड़ लेते है और सब के साथ वैर बांध लेते हैं· परन्तु यहां एक प्रश्न खड़ा होता है कि क्या बहुत से मनुष्य अपने मन और इन्द्रियों को वश में न रखने के कारण अपने जीवन को नष्ट नहीं कर बैठते और अपने सुख को आहुति नहीं दे देते? अवश्य दे देते हैं। हमे अपने जीवन में बहुत ही कम लोग ऐसे मिलते हैं कि जो भारी भरकम हों और जिनमें वह गम्भीरता पाई जाय कि जो एक सर्वांग सुन्दर और विशुद्ध चरित्र मनुष्य मे होनी चाहिये।

निस्सन्देह मनुष्य कषाय के वशीभूत होकर आपे से बाहर हो जाता है और क्रोध में लाल पीला हो जाता है। अत्यन्त शोक के कारण विवश होकर रोने पीटने लगता है। भय और

चिन्ता के मारे इधर उधर मारा मारा फिरता है। यह दशा उसी मनुष्य की होती है जिसके वश में उसका मन नहीं होता। जिस मनुष्य ने अपने मन को अपने वश में कर लिया है और अपने विचारों को विशुद्ध और पवित्र बना लिया है, वही मनुष्य आत्मिक भूकम्पों पर विजय प्राप्त कर सकता है अर्थात् अपनी कषाय और वासना को दबा सकता है। कषाय और वासना आत्मा के गुण को नाश कर देती हैं और उसे नरक के गड्ढे में डाल देती हैं।

ऐ कषाय और वासना के वशीभूत हुई आत्माओ! और ऐ चिन्ता में पड़े हुए आत्माओ! तुम चाहे कहीं हो और चाहे किसी अवस्था में हो, इस बात को अच्छी तरह जान लो कि जीवन रूपी समुद्र में सुख के टापू लहलहा रहे हैं और तुम्हारे आदर्श का प्रकाशमान तट तुम्हारे आने की बाट देख रहा है। तुम अपने मन रूपी नौका की पतवार को दृढ़ता से पकड़े रहो अर्थात अपने मन को चंचल और चलायमान न होने दो। तुम्हारी आत्मा रूपी नौका के भीतर सब से बड़ा नाविक विश्राम कर रहा है। वह केवल सो रहा है। उसे जगा दो अर्थात् अपने मन को चेतो और उस के भीतर जो परमात्मा विद्यमान है, उसकी ओर देखो। इन्द्रिय-पराजय में बल है, सद्विचारों में विजय है और शांति में शक्ति है। अपने मन से कहो कि शांत हो, शांत हो, शांत हो।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः